International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 22-01-2019; Accepted: 26-02-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 2; March 2019; Page No. 24-27

शैक्षणिक मूल्य एवं वतर्मान परिप्रेक्ष्य

डॉ० मैना निर्वाण
सहायक आर्चाय, राज. विज्ञान, राज. डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

युनेस्को के शिक्षा के आयोग ने 21वी सदी में शिक्षा विषय पर 1996 में 'learning; the treasure within.' नामक रिपोर्ट तैयार की इस रिपोर्ट के अनुसार सिखने के स्तम्भों में से एक है, साहचर्य के लिये सिखना । इसे प्राप्त करने के लिये आयोग ने गुणात्मक शिक्षा के सभी आयोमों के विकास का सुझाव दिया। साहचर्य के लिए सिखने का तात्पर्य है, व्यक्ति अपने आपको समाजोपयोगी बनाने, उसके साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता व कौशल की प्राप्ति करे। यह साहचर्यता केवल सामाजिक प्राणी 'व्यक्ति' मात्र के साथ ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्रकृति के साथ है। जिसमें व्यक्ति प्रकृति के हर घटक–चाहे वह मनुष्य हो, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी अथवा पेड़–पौधे, सभी के साथ यथोचित व्यवहार करे। अपने विकास तथा पोषण को हर घटक के विकास व पोषण का पूरक बनाये । क्योंकि मनुष्य ही सब कुछ नहीं है, वरन् प्रकृति के ये सारे घटक मनुष्य के अस्तित्व व व्यक्तित्व विकास में पूरक होते है।

शिक्षा ही व्यक्ति को समाज के लिए अधिक उपयोगी व कार्यकुशल बनाती है। कुशलता, सृजनशीलता, परिश्रम, बल, संवेदना, प्रेम, करूणा, सद्भाव आदि गुणों के विकास का माध्यम शिक्षा ही है। अर्थात शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव है। विकसित व्यक्तित्व ही औधोगिक विकास (विकास के सभी आयामों) की प्रमुख पूंजी है।[1] साक्षरता संसार का मार्ग प्रशस्त करती है अन्यथा वे बन्द पड़े रहते है। यह अन्य कौशल की प्राप्ति और अधिक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के विकास हेतु एक पूर्ण आवश्यकता है। साक्षरता व्यक्ति के लिये मात्र साक्षर बनाने के लिये न होकर, जब संगठित जीवन मे व्यक्ति को उसका उचित स्थान दिलाने और सभी प्रकार के शोषण से मुक्त करने में प्रयुक्त होती है, तभी सही अर्थों में कार्यात्मक कही जा सकती है।[2]

यूनेस्को के शिक्षा आयोग ने शिक्षा को वैज्ञानिक रूप देने के उद्धेश्य से एक आयोग का गठन किया था। इस आयोग ने विस्तृत अध्ययन के बाद अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि शिक्षा का मूलभूत आधार आध्यात्म, सह–अस्तित्व, मजबूत सामाजिक संरचना पर आधारित होनी चाहिए।[3] किन्तु आज हमारी शिक्षा प्रणाली में जीवन मूल्यों, चरित्र निमार्ण तथा व्यक्तित्व विकास की शिक्षा का पाठयचर्या तथा पाठयक्रम में कोई स्थान नहीं है। शिक्षा की परिभाषा आज अत्यन्त संकीर्ण (मात्र मनीमेकर या mercenary) हो गयी है। शिक्षा प्रणाली सैद्धान्तिक व सूचनात्मक होती जा रही है । मस्तिष्क में केवल सूचनाएं संग्रहीत हो रही है, संस्कार नहीं। परिणामस्वरूप लक्ष्यविहीन युवा पीढ़ी स्वेच्छाचारी बनती जा रही है। युवा वर्ग में आज एक निराशा व कुण्ठा पनपती जा रही है। युवा आबादी आज बेरोजगारी का शिकार है। जिससे दिगभ्रमित हो कर न केवल आत्मघाती वरन् राष्ट्र व समाज विरोधी गतिविधियों में लिप्त होती जा रही है। समाज में भ्रष्टाचार, अनाचार, आतंकवाद, स्वार्थपरता, चाटकारिता, धनलोलुपता, नशाखोरी, आक्रामकता बढ़ती जा रही है। समाज व राष्ट्र की इन समस्याओं तथा व्यक्ति की इन विकृतियों के समाधान हेतु हमें शिक्षा, व्यक्ति, शैक्षिक मूल्यों, शिक्षा तथा समाज तथा शिक्षा प्रणाली के अन्तः सम्बन्धों को पुनः परिभाषित करना होगा।

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा की प्रकिया मूलतः एक सांस्कृतिक प्रकिया है क्योंकि उसका उद्देश्य संस्कृति का नैरन्तर्य और उसका परिष्करण एवं परिवर्द्धन है। 'एनसाईक्लोपीडिया ऑफ सोशल साईंसेज' में शिक्षा की परिभाषा करते हुए उसे बालक के संस्कृति में प्रवेश की प्रकिया कहा गया है।..... इसलिए शिक्षा की वही प्रकिया सही और सार्थक मानी जा सकती है जो मानवीय सर्जनात्मकता के विकास में सहायक हो।[4] शिक्षा यदि संस्कृति में प्रवेश की–व्यक्ति के सांस्कृतिकरण की प्रकिया है तो उसका क्षेत्र सिर्फ उपयोगी जानकारी देने तक ही सीमित नहीं समझा जा सकता। संस्कृति ज्ञान के स्तर पर मूल्यबोध और आचरण के स्तर पर मूल्यनिष्ठा की सहज प्रकिया है। जीवन में मूल्यबोध और मूल्यनिष्ठा की यह सहजता विकसित करना ही शिक्षा का प्राथमिक प्रयोजन होना चाहिए।[5] शिक्षा का वास्तविक मतलब कुछ परीक्षाएं पास कर लेना भर नहीं बल्कि इन समस्त (जीवन की) समस्याओं पर विचार करने लायक होना भी है, ताकि आपका मन यान्त्रिक और परंपराबद्ध न हो जाए, ताकि आपका मन सृजनशील हो, ताकि आप समाज के अनुकूल होने में ही न लगे रहें बल्कि उसे तोड़ कर पूर्णतः नये का सृजन करें .....क्योंकि शिक्षा का तात्पर्य आखिरकार यही तो है कि आप स्वतंत्रतापूर्वक, बेरोकटोक विकसित हो सकें ताकि एक अभिनव विश्व का सृजन संभव हो।[6] हमारी वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में शिक्षार्थी की स्वतन्त्रता तो बहुत दूर की बात है, शिक्षक की स्वतन्त्रता को भी अधिकाधिक सीमित करने के कई प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष उपाय किये जाते है। वर्तमान शिक्षा– प्रणाली में इसलिये शिक्षार्थी सीखने के लिये स्वतन्त्र नहीं होता। वह सीखने के लिये मजबूर होता है–वह सब कुछ सीखने के लिये जो उसे सम्बन्धित व्यवस्था सिखाती है। इसलिये, मेरी राय में, शिक्षा की सार्थकता की एक कसौटी यह भी होनी चाहिए–खास तौर पर आधुनिक समाजों में–कि वह किस हद तक शिक्षार्थी को अनुशासित होने के साथ–साथ विद्रोही भी बनाती है। .....शिक्षा की वास्तविक सार्थकता इसमें है कि वह न केवल शिक्षार्थी के मूल्यबोध और उसके अनुकूल आचरण करने की प्रवृति को पुष्ट करे बल्कि अन्याय और असत्य के विरूद्ध असहयोग और संघर्ष की प्रवृति का विकास भी करे । अन्याय और उसके विरूद्ध संघर्ष ही व्यक्ति के मूल्यगत आचरण की वास्तविक कसौटी है, अतः यदि शिक्षा प्रकिया इस आचरण को पुष्ट नहीं करती है तो वह अपने वास्तविक उद्देश्य में असफल ही कही जायेगी।[7]

प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ के लिए सामान्यतः जो शब्द प्रयुक्त किए जाते है, उनमें 'ज्ञान', 'विद्या', और 'शिक्षा' प्रमुख है। अरबी–फारसी में शायद 'इल्म', 'तालीम' और 'हुनर' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों के अभिप्राय, संदर्भ और निहितार्थों में सूचना और कौशल, सत्य और न्याय, विज्ञान और

नैतिकता, धर्म और चरित्र जैसी अवधारणाएं समाहित है। कुल मिलाकर कला और संस्कृति का एक व्यापक फलक इस तरह शिक्षा की परिधि में आ जाता है। शिक्षा की आधुनिक अवधारणा इस तुलना में अपेक्षाकृत सीमित और कई मामलों में तो संकीर्ण प्रतीत होती है।[8] महर्षि दयान्द ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहा है कि जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभगुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषो को छोड़ कर सदा आनन्दित हो सके, वह शिक्षा कहलाती है।[9] शिक्षा जिससे विद्या सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता की वृद्धि होवे और अविद्यादि दोष छूटे उसको शिक्षा कहते है। विद्या और अविद्या को परिभाषित करते हुए महर्षि दयानन्द ने कहा है कि जिससे पदार्थ यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जाये उसको विद्या और जिससे किसी पदार्थ का वास्तविक ज्ञान न होकर अन्यायरूप कर्म किये जाये उसे अविद्या कहते है। अविद्या जो विद्या के विपरित है, भ्रम, अन्धकार और अज्ञानरूप है इसलिए इसको अविद्या कहते है। वैशेषिक दर्शन में विद्या अविद्या को परिभाषित करते हुए कहा है ''इन्द्रिय दोषात् संस्कार दोषाच्य अविद्या।''[10] अर्थात इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है। ''तद् दुष्टं ज्ञानम''[11] अर्थात जो दुष्ट विपरीत ज्ञान है, उसको अविद्या कहते है। आज की शिक्षा कमोबेश अविद्या की श्रेणी में ही आती है, जो प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। ''प्रतिस्पर्धा हमे क्रूरता की दिशा में ले जा रही है। क्या आप उस शब्द का आशय समझते है। इसका अर्थ है बर्बरता, दूसरे की अवहेलना, दूसरे की उपेक्षा करना। चूंकि आप महत्वाकांक्षी है, प्रतिस्पर्धा की भावना से भरे है, आक्रमक है, इसलिये अधिक से अधिक पाना चाहते है। लेकिन आपकी ही तरह दूसरा मनुष्य भी यही सोचता है कि अधिक पाने का अधिकार उसे भी है और इसलिये वह भी संर्घष करने लगता है। इस नीवं पर हमारे समाज का ढ़ांचा बना है –ईष्या पर, द्वेष पर, महत्वकांक्षा पर।[12] इस शिक्षा प्रणाली ने इन्द्रियों व संस्कार दोनों को दुषित किया है। फलतः समाज में अनाचार व्यभिचार के साथ–साथ हिंसा, कट्टरता, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, कपट, धनालोलुपता आदि विकार आ गये है।

भारतीय श्रेष्ठ मनीषियों द्वारा हमें विरासत में मिला ज्ञान यह कहता है कि शरीर, बुद्धि, मन एवं आध्यात्म का समन्वित विकास ही वास्तविक शिक्षा है।[13] वर्तमान शिक्षा प्रणाली छात्रों के बौद्धिक विकास आई क्यू (Intellegence Quotient) पर जोर देती है ताकि छात्र रोजगारोन्मुख हो सके। तथाकथित ऊँचा वेतन प्राप्ति की अन्धी दौड़ में सम्मिलित हो सके। इस प्रतिस्पर्धा में छात्रों के ई. क्यू. (Emotional Quotient) के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता हैं। जिससे छात्रों में सद्भावना के विकास तथा दुर्भावना निवारण का कौशल ही विकसित नहीं हो रहा है।

प्रकृति का शोषण किए बिना पोषण की प्रवृति का निर्माण भी आध्यात्म ही है। इसके विपरित प्राकृतिक परिवेश को अपना विरोधी मानकर या उसे अपने इस्तेमाल की एक चीज समझ कर उस पर नियन्त्रण स्थापित करने की कोशिश एक प्रकार की आत्मकेन्द्रित और हिंसक प्रवृति है क्योंकि यह पूरे जीवन की, जीवन के स्त्रोत की अवमानना और दमन है। भारतीय परम्परागत अनुभवजन्य चिन्तन के अनुसार शैक्षणिक क्षेत्र में आई क्यू, ईक्यू के अतिरिक्त आध्यात्मिक स्तर पर एस. क्यू. (Spiritual Quotient) का भी समावेश होना चाहिये । इस तरह शरीर, बुद्धि, मन तथा आध्यात्म इन चारों तत्वों से सन्तुलित व समन्वित शिक्षा प्राप्त होने पर छात्रों मे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होगा।[14]

इस प्रकार शिक्षा वह है जो शिक्षा हमे वैज्ञानिक तरीके से सोचने, समझने, रहने, विचार करने की शक्ति प्रदान करती है। शिक्षा वह साधन या प्रकाश है जो मानव मस्तिष्क को जागृत करके विकास व उत्थान की ओर अग्रसर करती है। यह हमे स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति प्रदान करती है। जिससे हम विचारों वस्तुओं रीति रिवाजों को तार्किक तरीके से समझ कर उनमे परिवर्तन ला सके। समाज की जड़ता को तोड़ने हेतु क्रियाशील हो सके। यह हमे सत्य की प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष का नैतिक बल प्रदान करती है। मनुष्य की आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक ही नहीं, भावनात्मक और मानसिक भी है।[15] सुशिक्षित व्यक्ति को समाज की जड़ता व समस्याएँ भावनात्मक व मानसिक रूप से उद्वेलित करती रहती है। वह आत्मसंतोष या आत्मनिर्भरता की अनुभूति नहीं कर सकता, जब तक समाज में अन्याय व शोषण है। इतिहास साक्षी है कि जिस समाज में शिक्षा का स्तर जितना ऊँचा रहा है उस समाज ने उतनी ही अधिक उन्नति की है।

शिक्षा का उद्देश्य

भारतीय दर्शन में व्यक्ति के जीवन के चार लक्ष्य– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष निर्धारित किए गए हैं। इन लक्ष्यों में व्यक्ति के लौकिक व पारलौकिक उत्थान समाहित है। सच्ची शिक्षा व्यक्ति के भौतिक कल्याण के साथ–साथ उसके आध्यात्मिक विकास को भी सुनिश्चित करती है।

शिक्षा का उद्देश्य ही मानव को बन्धन मुक्त करना है "सा विद्या या विमुक्तये"। शिक्षा व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करती है। उसमें दया, करुणा, ममता, प्रेम, सेवा, श्रम, सम्मान, विनम्रता, सहिष्णुता, संवेदना जीवन मूल्यों का संचार करती है। मनुष्य, मनुष्य इसलिए है क्योंकि वह जैविक क्रियाओं से परे मूल्यों की सृष्टि करता है। ऐसे मूल्यों की जिनके लिये त्याग और प्रणों के बलिदान को भी उचित समझे। यही मनुष्यत्व है।[16] गांधी के अनुसार सच्ची शिक्षा का उद्देश्य आत्म साक्षात्कार और उसके माध्यम से ईश्वर और सत्य का ज्ञान कराना है। शिक्षा ऐसी हो जो सत्य की प्यास बुझा सके और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का पूर्ण विकास कर सके। गांधी के अनुसार एक पढ़ा लिखा मस्तिष्क एवं जंगली घोड़े की तरह है जो काफी बलशाली है, लेकिन जब तक आत्मा के द्वारा उसको नियंत्रित नहीं किया जायेगा, उसका सही उपयोग संभव नहीं है। इसलिए अक्षर ज्ञान शिक्षा का उद्देश्य नहीं होना चाहिए, अपितु चरित्र निर्माण, आत्मविकास और हृदय की शिक्षा ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

अंग्रेज विद्वान हक्सली शिक्षा के बारे में कहते हैं "उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके बस मे रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपे हुए काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शान्त और न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इंद्रियाँ उसके बस में है, जिसके मन की भावनाएं बिलकुल शुद्ध है, जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित माना जायेगा, क्योंकि वह कुदरत के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।[17] वस्तुतः सम्यक शिक्षा वही है जो विद्यार्थी को जीवन की कठोर यर्थाथपरक और जटिल समस्याओं का सामना करना सिखाएँ ताकि वे जीवन के सपंदन को महसूस कर सके और तमाम तरह के सवालों को समझने योग्य बनाए ताकि इसे उचित ठहराने के बजाय वे इसे समझे और इससे बाहर निकालने की कोशिश करें।[18] शिक्षा मन मस्तिष्क को इतना निर्मल व परिष्कृत कर देती है कि पूर्वागृह मुक्त हो कर स्वतंत्र चिंतन कर सके। क्योंकि जो व्यक्ति शास्त्र से बंध जाते हैं, वे चिन्तन से कट जाते हैं। जिनके लिए शास्त्र महत्वपूर्ण है उनके लिए समाधान महत्वपूर्ण है और जिनके लिए समस्या महत्वपूर्ण है वे चिन्तन की राह पर निकाल जाते हैं।[19] चिन्तन ही वह तत्व है जो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को ऊर्ध्वगामी बनाता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन का लक्ष्य न केवल सुसभ्य व चरित्रवान युवा तैयार करना ही था बल्कि एक आदर्श समाज की स्थापना करना भी उसकी पहली प्राथमिकता थी। प्लेटो ने भी

शिक्षा को एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया कहा है जिसके द्वारा समाज के घटक एक सामाजिक चेतना से भर कर समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना सीखते है। यूनेस्को के अनुसार किसी भी देश की शिक्षा का संबध उस देश की संस्कृति के संरक्षण तथा विकास के लिए होना चाहिए। The education of the country should be rooted to its culture and wedded to its growth.

प्लेटो के अनुसार जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन करके शिक्षा हमारे जीवन की भूलों को सुधारती है, वह दोष की जड़ पर प्रहार करती है। यह हमें आत्मवलोकन का अवसर व क्षमता प्रदान करती है। उचित शिक्षा या सच्ची शिक्षा के माध्यम से हम समाज से जात–पात, छुआछूत, भ्रष्टाचार, अनैतिक आचरण, आडम्बर को ही समाप्त नहीं कर सकते, बल्कि युवा पीढ़ी को दिगभ्रमित होने से बचा सके है। उसमें आत्मगौरव, परिश्रम, सामाजिक सरोकार, देश प्रेम, राष्ट्र गौरव की भावना का संचार कर सकते हैं। आधुनिकता की अन्धी दौड़ से बचाकर उसे अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ कर संस्कृति के संचय व पोषण की ओर मोड़ सकते हैं। शिक्षा को जीवन की प्रयोगशाला कहा गया है। शिक्षा ही वह सशक्त उपागम है, जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न संस्कारों के माध्यम से अपने शरीर मन और आत्मा का समन्वित विकास कर समाज एवं राष्ट्र का योग्य नागरिक बनाता है। नागरिकों को अपनी संभावनाओं की सर्वोच्चता पर प्रतिष्ठित करना गुणात्मक शिक्षा का कार्य है।[20] शिक्षा वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति समाज मे अपना उचित स्थान पाता है, अपने को उसके अनुसार ढालता है और तत्संबंधी कर्तव्य का निःस्वार्थ भाव से पालन करता है।[21] यहाँ दो बाते स्पष्ट है व्यक्ति समाज में अपना उचित स्थान तभी पा सकता है, जब वह आत्मनिर्भर हो, चरित्रवान हो। आत्मनिर्भरता हेतु कैसा भी व्यवसाय अपनाया जाए, वह कुशलता व निपुर्णता की मांग करता है। इस निपुर्णता व कुशलता की प्रवाहक शिक्षा ही है, चाहे वह औपचारिक हो अथवा अनौपचारिक।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली व समस्याएँ

समाज में ज्ञान की प्रयुक्ति को सभ्यता का मापदंड मानें तो भारत के संदर्भ में निराशा दिखाई देती है।[22] भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली की शुरुआत लार्ड मैकाले ने 1835 में की। जिसका उद्देश्य अंग्रेजों को उनके कार्यों में सहयोग हेतु एक ऐसे सहायक वर्ग को तैयार करना था जो मानसिक रूप से गुलाम लेकिन बोल चाल सोचने समझने व रहन सहन में पश्चिम का अनुकरणीय हो, जो पश्चिम को श्रेष्ठ मानते हुए हीन भावना से ग्रस्त होती चली जाए ताकि अँग्रेजी शासन को न केवल भारत में स्थापित करने में आसानी हो बल्कि उसे स्थायित्व भी प्रदान किया जा सके। रजनी पाम दत्त के अनुसार ''भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किये जाने का उद्धेश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्णरूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो, किन्तु रूचि, विचार, शब्द और बुद्धि से अंग्रेज हो जाए। इस शिक्षा प्रणाली ने भारत की उस महान शिक्षा व्यवस्था को खत्म कर दिया जो व्यक्ति का सर्वागीणं विकास करते हुए समाज को पुष्ट व राष्ट्र को समृद्ध बनाती थी। आज की शिक्षा व्यक्ति के तन, मन व आत्मा का विकास नहीं करती बल्कि मस्तिष्क में मात्र सूचनाओं के संगृहण पर बल देती है। आज जीवन मूल्यों का स्थान अर्थवाद ने ली लिया है। जिससे शिक्षा का भी बाजीकरण हो गया है। शिक्षा सेवा का नहीं बल्कि संगठित व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का रूप लेती जा रही है।

गांधी के मत में शिक्षा व्यवस्था दोषपूर्ण है। यह न केवल एक अन्यायी सरकार से संबन्धित है अपितु तीन महत्वपूर्ण तरीके से दोषपूर्ण है।

1. यह देशी संस्कृति के स्थान पर विदेशी संस्कृति पर आधारित है।
2. यह हाथ और हृदय की संस्कृति की अवहेलना कर अपने आपको केवल मस्तिष्क की संस्कृति से संबन्धित रखती है।
3. यह एक विदेशी माध्यम से प्रेषित की जाती है।[23]

शिक्षा प्रणाली मे समग्रता का अभाव सा है, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा जैसा कई स्तर बन गए हैं, जहां माध्यमिक शिक्षा के प्रति सरकार का दृष्टिकोण उदासीन है, वहीं प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण एवं उच्च शिक्षा का वैश्वीकरण हो रहा है।[24] यह मात्र शिक्षा के विभिन्न स्तरों का ही नहीं बल्कि समाज का भी विभेदीकरण है। यह स्थिति समाज को कई वर्गों में विभाजित कर रही है। फलतः समाज मे ना तो समतामूलक समावेशी सहभागिक व सहगामी सोच का विकास हो पा रहा है ना ही राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का सर्वग्राह्य समाधान निकल पाता है। प्राचीन समय में राजा व रंक का बच्चा एक ही गुरुकुल में एक ही आचार संहिता में एक जैसी शिक्षा ग्रहण करता था। अतः समस्याओं के समाधान मे सहभागी व सर्वहिताय का भाव रहता था। समाज के हितों में इतना टक्कराव नहीं था। आज समाज मे आर्थिक, सामाजिक वैचारिक स्तर पर कई वर्ग बन गये हैं। इन वर्गों में क्रमशः उपर्युक्त स्तरों पर निरंतर टक्कराव होता रहता है।

भारतीय संस्कृति के संवाहक एवं राष्ट्रनिर्माता के रूप में प्रतिष्ठित शिक्षक संकल्पना के समक्ष आज मूल्यों के संकट की स्थिति अति विचित्र और सोचनीय रूप में दिखाई देती है।'––वे स्वयं को समाज के एक ऐसे वंचित दमित शोषित वर्ग का हिस्सा समझते हैं, जिसका सम्मान, गरिमा केवल राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कारों से जुड़ा है।[25]इसका एक बड़ा कारण शिक्षकों की गैर शैक्षिक कार्यों में नियुक्ति, बढ़ता कार्यभार, तथा मानसिक दबाव है। उच्च शिक्षा में किए जाने वाले नए प्रयोगों व नीतियों से उच्च शिक्षा में शोध की गुणात्मकता प्रभावित हो रही है। उच्च शिक्षा से जुड़े शिक्षकों की पदोन्नति उनके शोध कार्यों अर्थात API स्कोर से जोड़ दी गई है। जिससे न केवल शोध की मौलिक प्रवृत्ति व गुणात्मकता प्रभावित हो रही है बल्कि पत्र पत्रिका व प्रकाशन का बाजार भी तैयार हो रहा है। ऐसे में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मौलिक चिन्तन व मौलिक लेखन की प्रवृत्ति खतरे में पड़ती जा रही है।

सही व प्रभावशाली संप्रेषण व्यक्तित्व का अहम हिस्सा है। मन मे उठने वाले हर मनोभाव और बात को सटीक शब्दों में अभिव्यक्त करना एक बड़ी शक्ति है। बच्चे अपनी मातृ भाषा मे जीतने सहज व स्वाभाविक रूप मे सम्प्रेषण कर सकता है, उतना उस भाषा में नहीं जो उस पर थोपी जाती है, जिसे उसे सायास सिखाया, पढ़ाया जाता है। एक तरफ मातृ भाषा के शिक्षण का अभाव मानव के समग्र विकास को अवरुद्ध करता है वहीं यह हमारी सांस्कृतिक व राष्ट्रीय चेतना को भी धूमिल करता है। अंग्रेजी की बढ़त ने हमे अपनी परम्पराओं, संस्कृति, शास्त्र, भाषा ही नहीं, अपने लोगों और प्रदेशों से भी भावनात्मक रूप से दूर किया है।

अज्ञेय ने इस पर भी ध्यान दिलाया था कि देश में मौलिक चिंतन कि संभावना कम से कमतर क्यों होती जा रही है। सभी विषयों में अभी स्थिति क्या है? विदेशी भाषाओं के पुराने नए चिंतन का पहले अंग्रेजी मे अनुचिंतन होता है, फिर उसका घटिया अँग्रेजी मे अनुलेखन होता है। तब उसका जैसा तैसा अनुवाद भारतीय भाषाओं मे आता है। इसी तीसरे दर्जे कि बौद्धिक सामाग्री पर हमारी सम्पूर्ण बौद्धिक व्यवस्था पल रही है। इसी से हमारी नई पीढ़ी के कर्णधार, शिक्षाविद् पत्रकार, प्रशासक आदि बन रहे है। उनमें सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओं से लेकर दर्शन, साहित्य आदि किसी विषय में मौलिक चिंतन कि क्षमता कहाँ से पैदा होगी।[26]

संदर्भ सूची

1. प्रो. नरहरि अन.पी.एस. चन्द्रशेखर शिक्षा दृष्टिकोण और दिशा अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ दिल्ली, पृ 7–8

2. जयश्री भट्ट,समाज कल्याण नारी दिक्षा सांस्कृति आदित्य पब्लिकेशन, बिना, 1998, पृ. भूमिका)
3. प्रो. नरहरि,..... पृ. 09
4. नन्दकिशोर आर्चाय, संस्कृति का आचरण, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 1997, पृ. 109
5. नन्दकिशोर आर्चाय, ... पृ. 114
6. जे.कृष्णमूर्ति, शिक्षा क्या है ? राजपाल एण्ड संन्स दिल्ली, 2008, पृ. 11
7. नन्दकिशोर आचार्य, ... पृ. 115–116
8. राजा राम भादू, संस्कृति के प्रश्न, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2016, पृ. 30
9. व्यवहारभानु, पृ. 174
10. वैशेषिक दर्शन, 09.02.2010
11. वैशेषिक दार्शन, 09.02.11
12. जे. कृष्ण मूर्ति, ... पृ. 30
13. प्रो. के. नरहरि.....पृ. 14
14. प्रो. के.नरहरि ..... पृ. 16–17
15. शंकर शरण, अज्ञेय की भाषा, भारतीय आधुनिक शिक्षा, एन. सी. आर., वर्ष 31, अंक 4, अप्रेल, 2011
16. शंकर शरण, ... अप्रेल, 2011
17. मोहन दास करमचन्द गांधी, हिन्दस्वराज्य, ठाकोरदास नानावटी (अनु.), नवजीवन प्रकाशन
18. उषा शर्मा, अध्यापक शिक्षा–सवालों के दायरे में, आधुनिक भारतीय शिक्षा, वर्ष 31, अंक 4, अप्रेल, 2011
19. उषा शर्मा, ... अप्रेल, 2011
20. संजीव शुक्ला, आधुनिक भारतीय शिक्षा, वर्ष 31, अंक 4, अप्रेल, 2011
21. ज्योति प्रसाद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास, भाग 1, के. नाथ एण्ड कम्पनी, मेरठ, 2000, पृ. 53
22. राजाराम भादू.....पृ. 25
23. नरेश दाधीच, महात्मा गॉधी का चिन्तन, रावत पब्लिकेशन, 2014, पृ. 17
24. संजीव शुक्ला,..... अप्रेल, 2011
25. उषा शर्मा, ... अप्रेल, 2011
26. शंकर शरण,..... अप्रेल, 2011